International Journal of Multidisciplinary Research and Development
Online ISSN: 2349-4182, Print ISSN: 2349-5979, Impact Factor: RJIF 5.72
www.allsubjectjournal.com
Volume 4; Issue 4; April 2017; Page No. 306-312

भारतीय कारागारो की समस्यायें तथा सुधार का न्यायिक प्रयास

डॉ धर्मेन्द्र कुमार सिंह
विधि विभाग, बरेली कॉलेज, बरेली, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश
भारत में वर्तमान में लागू जेल व्यवस्था 125 वर्षो से भी अधिक पुरानी है। यदि हम जेल प्रशासन तथा कैदियों की स्थिति को ध्यान से देखे तो इसमें कोई ज्यादा परिवर्तन दिखायी नहीं पड़ते है। जेलो का प्रशासन तथा कैदियों की समाज में पुर्नस्थापना सम्बन्धी प्रयास अभी भी वाद विवाद का विषय बना हुया है। कई राज्यों में जीर्ण–शीर्ण जेल संरचना, अति भीड़ की समस्या, विचाराधीन कैदियों की बढ़ती संख्या, अपर्याप्त जेल कर्मचारी, पर्याप्त देखभाल की कमी आदि समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। माननीय उच्चतम ने जेलो का प्राासन तथा कैदियों की स्थिति के सम्बन्ध में लगातार चिन्ता व्यक्त किया है। भारतीय कारागारो में व्याप्त निर्मम, अमान्य तथा दमनात्मक कारागार प्रथाओं के विरूद्ध दृष्टिकोण व्यक्त करते हुए उच्चतम न्यायालय ने कैदियों के अधिकारों के बारे में अनेक निर्णयों में यह निर्धारित किया है कि कैदियों के साथ मानवजनो जैसा व्यवहार किया जाना चाहिए और उनके प्रति व्यवहार मानवता तथा न्यायोचितता के मूल मापदंडो के अनुरूप होना चाहिए।

मूल शब्दः उच्चतम नयायालय, न्यायिक प्रयास, कारागार प्रशासन

1. प्रस्तावना

कारागार लोक संस्थायें है और इसलिए इसे विधि के अनुसार क्रियान्वित होना अनिवार्य है। विधि स्पष्टतः और निश्चित रूप से यह घोषित करती है कि यदि कोई व्यक्ति किसी अपराध के लिए दोषी पाया जाता है तो वह जुर्माना या कारावास से द.डित किया जाता है। एक व्यक्ति को दण्ड के तौर पर कारागार भेजा जाता है। भारत में वर्तमान में लागू कारागार प्रशासन व्यवस्था 125 वर्षो से अधिक प्राचीन है। 18वीं शताब्दी तक पूरे विश्व में कारागार ऐसे राजकीय यातना केन्द्र थे जिनमें बन्दियों के रहन–सहन की स्थिति पशुओं के समान थी। जिनमें कैदियों को हर प्रकार की यातना (शारीरिक, मानसिक) दी जाती थी। कारागार प्रशासन का कैदियों के प्रति व्यवहार अत्यन्त अमानवीय व क्रूर था और जिनमें अपराधी व्यक्ति को पापी समझकर यातनायें दी जाती थी। ऐसा स्वीकार किया जाता था कि अपराधी काराग्रहों की यातना को सहकर ही अपने अपराध का प्रायश्चित कर सकता है अथवा भविष्य में अपराध न करने का निर्णय ले सकता है।[1]

कारागार सुधार की तरफ लोगों का ध्यान आकर्षित करने का श्रेय जॉन हावर्ड को जाता है जिन्होंने 1773 ई0 में काराग्रह की भयानक दशाओं की ओर ध्यान आकर्षित किया था। भारत में कारागार सुधार हेतु लार्ड मैकाले द्वारा दिसम्बर 21, 1835 में दी गई रिपोर्ट के आधार पर लार्ड विलियम बेंटिक द्वारा 1836 में जेल अनुशासन समिति का गठन किया गया था।[2] अनेक समितियाँ बनने के बाद 1894 के कारागार अधिनियम को पारित किया गया जिसके द्वारा कारा•ार सुधार की दिशा में सार्थक प्रयास आगे बढ़ा। कारागार सुधार के इतिहास में 'भारतीय जेल सुधार समिति' 1919–1920 का महत्वपूर्ण स्थान है। स्वतन्त्रता के पश्चात् भारतीय कारागारों में सुधार की गति और भी तेज हो गयी और भारतीय संविधान में जिस सामाजिक न्याय की भावना को निहित किया गया है उसकी प्राप्ति हेतु विभिन्न मामलों में न्यायालयों द्वारा उस कैदी तक न्याय पहुँचाया गया जिसके बारे में कोई आंकलन भी नहीं कर सकता था। भारतीय संविधान में वर्णित मौलिक अधिकारों का सहारा लेकर भी कारागार सुधार तथा कैदियों के सुधार हेतु अनेकों मामलों द्वारा बताया गया है।जेल मेन्युअल के सभी नियमों का पालन करना जेल अधिकारियों एवं कर्मचारियों का कर्तव्य है, परन्तु ऐसा वास्तविकता के धरातल पर नहीं हो सका है। समय–समय पर कुछ कैदियों या उनके परिजनों ने जेल में हो रहे अत्याचारों के विरूद्ध न्यायालय में आवाज उठाई है।

कारागार प्रशासन और कैदियों का सुधार वर्तमान समय में विभिन्न सार्वजनिक मंचो के वाद–विवादों और आलोचना का ज्वलन्त मुद्दा बन गया है। हाल के वर्षो में माननीय उच्चतम न्यायालय भी कारागार की अमानवीय और अपमानजनक परिस्थितियों के विषय में चिन्तित नजर आया है। कई राज्यों में छिन्न–भिन्न कारागार के ढाँचे की समस्या, कैदियों की भीड़–भाड़, विचाराधीन, कैदियों की समस्या, कारागार सम्बन्धी कर्मचारियों की अपर्याप्तता, उचित देखभाल आदि समस्याओं ने मीडिया व सामाजिक सुधारकों तथा कारागार प्रशासन का अपनी ओर ध्यान आकर्षित किया है। यदि मानवाधिकारों के हनन की बात करें तो हम पाते है कि 'कारागार' उसमें प्रथम स्थान पर आता है क्योंकि जो कानून वास्तव में क्रियान्वित होने चाहिए वह लागू नहीं किया जाता है। भारतीय कारागारों की समस्या को माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा भी अपने निर्णय राममूर्ति बनाम कर्नाटक राज्य[3] के वाद में उल्लेखित किया गया है। कैदियों के कारावासित हो जाने मात्र से उनके अधिकार समाप्त नहीं हो जाते, हाँ यह अवश्य है कि कुछ समय के लिये उनके कुछ अधिकारों से उन्हें वंचित कर दिया जाता है, लेकिन फिर भी वे अपने सभी अधिकारों के हकदार होते है।

बहुत से दण्डशास्त्रियों तथा समाजशास्त्रियों का मत है कि कारागार में जीवन व्यतीत करते हुए कैदी जिन तरीको या रास्तों या नियमों को ग्रहण करते है वो केवल समाज तथा संस्थाओं के लिये सरलीकरण ही नहीं बल्कि कैदियों के भविष्य के लिये भी है। जस्टिस थुरगुड मार्शल ने कारागार जीवन के सम्मान के बारे में कहा हैः– ''जब कारागार एक सहवासी के लिए एक गन्दी बस्ती हो जाती है तो यह उसकी मानव गुणवत्ता को कम नहीं कर देता,

उसके दिमाग में विचारों का आना बन्द नहीं हो जाता, उसकी बुद्धि एक नया दृष्टिकोण बनाने में समाप्त नहीं हो जाती, उसके आत्मसम्मान की इच्छा का अन्त नहीं हो जाता और न ही उसके स्वयं को अहसास की खोज समाप्त हो जाती है।[4]''

तेजी से बढ़ रहे अपराध तथा उसकी गम्भीरता को देखते हुए कारागार व्यवस्था में सुधार अति आवश्यक है।कारागार प्रशासन राज्य सरकार के हाथों में है। भारत में कारागार भारतीय संविधान की सातवीं अनुसूची में राज्य सूची की प्रविष्टि 4 में रखा गया है। कारागार प्रशासन कारागार अधिनियम 1894 और राज्य सरकारों के जेल नियमावली के द्वारा शासित होता है। अतः कारागार विधियों, नियमों, विनियमनों में परिवर्तन करने का प्राथमिक उत्तरदायित्व राज्य सरकार का है।

अब आधुनिक समय में कारागार प्रणाली का अर्थ कैदियों के सुधार हेतु है जिससे कारागार प्रशासन समाज को एक उपयोगी सदस्य वापस कर सकें। जिसमें कारागार से सुधार हेतु दी गई गाइडलाइन जो विभिन्न वादों के माध्यम से दी गई है के बारे उल्लेखित करता है।न्यायापालिका कैदियों को उनके अधिकारों को पहचान तथा सुरक्षा प्रदान करती है। संविधान के साथ–साथ कुछ ऐसी अन्य विधियाँ है जो अभी लागू है तथा जिनमें कैदियों के अधिकार, उनके कर्तव्य आदि उपबन्धित है जैसे बन्दी अधिनियम, 1900, बन्दी (न्यायालय में उपस्थित) अधिनियम, 1955, कारागार अधिनियम, 1894 आदि। जेल मैनुअल तथा पुलिस नियमावली में भी कैदियों के लिये कुछ निश्चित नियम व सुरक्षा उपायों को बताया गया है और इन उपायों या नियमों का अनुसरण करना जेल प्राधिकारियों का कर्तव्य है।

2. कारागार की समस्यायें

कारागार की कुछ प्रमुख समस्यायें जिनका निवारण आत्यधिक आवश्यक हो गया है तथा जिनके निवारण हेतु सरकार भी प्रयासरत् है, वह निम्नलिखित हैः

2.1 कारागारों में क्षमता से अधिक कैदियों का होना

कारागार में कैदियों की भीड़ की समस्या निरन्तर बढ़ती जा रही है। कैदियों की बढ़ती भीड़ के कारण जेल प्रशासन कैदियों को सुविधायें उपलब्ध कराने में असमर्थ है। इसी कारण से कैदी कारागारों में अमानवीय जीवन व्यतीत करने के लिए मजबूर है। कारागारों में भीड़ के कारण ही अनेक प्रकार की घटनायें जन्म लेती है जैसे आपराधिकता, स्वास्थ्य, अनुशासनहीनता आदि। 2014 की एन0सी0आर0बी0 की रिपोर्ट के आँकड़ों की बात करें तो वर्तमान समय में दादर व नागर हवेली कारागार में (531.7 प्रतिशत) भारी भीड़ है तथा उसके बाद छत्तीसगढ़ (258.7 प्रतिशत) व दिल्ली (221.6 प्रतिशत) का स्थान है।

चूँकि भीड़ की समस्या को रोकने के लिए सरकारों द्वारा अनेक प्रयास किये गये है तथा दण्ड विधि में अनेक संशोधनों के माध्यम से कैदियों की भीड़ की समस्या को कम करने का प्रयत्न जारी है। भारतीय जेलो में कैदियों की भीड़ को कम करने के लिए विधि आयोग ने अपनी 78वीं रिपोर्ट में कतिपय उपयोगी सुझाव दिये थे। जिसमें कैदियों को जमानत पर रिहा करने सम्बन्धी नियमों को शिथिल किये जाने की प्रमुख अनुशंसा की थी। जिसके पश्चात् दण्ड प्रक्रिया संहिता के विभिन्न प्रावधानों में संशोधन कर जमानत के नियमों को सरल बनाया गया है।

2.2 विचाराधीन कैदियों की समस्या

भारत के अधिकतर कारागारों में विचाराधीन कैदियों की समस्या देखने को मिलती है। गृह मंत्रालय के विश्वस्त सूत्रों को सही माने तो लगभग तीन लाख से अधिक विचाराधीन कैदी देश के अलग–अलग कारागारों में पड़े है। विचाराधीन कैदियों की इतनी बड़ी संख्या के पीछे मूलतः पुलिस द्वारा गिरफ्तारी के अधिकार का दुरूपयोग भी रहा है। भारत में लगभग काफी संख्या में व्यक्तियों को गिरफ्तार किया जाता है जिनमें कुछ व्यक्ति छोटे–मोटे अपराधों में संलिप्त होते है जिसमें सात साल तक की सजा का प्रावधान है। काफी संख्या में ऐसे विचाराधीन कैदी भी है जो कानून की अनभिज्ञता के चलते या उचित पैरवी के अभाव में जेलों में बंद है। दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 436–ए उन विचाराधीन कैदियों को जमानत पर छोड़ने का प्रावधान करती है। जिन्होंने अपने अभियोग के लिये संभावित अधिकतम सजा का आधा समय जेल में गुजार लिया हो। धारा 436 यह प्रावधान करती है कि जमानतीय मामलों में बंद उन आरोपियों को एक सप्ताह के बाद उनके निजी मुचलके पर रिहा कर दिया जाये, जिनके लिये कोई जमानत देने के लिए तैयार नहीं है। विचाराधीन कैदियों की संख्या कम करने के उद्देश्य से 2006 में दण्ड प्रक्रिया संहिता में एक महत्वपूर्ण संशोधन करके 'प्री बार्गेनिंग' का नया अध्याय जोड़ा गया। इसके तहत सात साल तक की सजा के मामलों में आपसी सहमति से मुकदमों का निपटारा करने का विकल्प प्रदान किया गया है। अभियुक्त अपना अपराध स्वीकार करने के एवज में सजा में आँधी से अधिक छूट प्राप्त करके रिहा हो सकता है। अमेरिका और अन्य पश्चिमी देशों में यह सिद्धान्त ज्यादातर आरोपियों द्वारा प्रयोग में लाया जा रहा है पर भारत में यह प्रयोग विफल रहा है। भारत में '*प्री* बार्गेनिंग' के प्रावधान व्यवहारिक नहीं है, जिसके कारण विचाराधीन कैदी इसका प्रयोग नहीं कर रहे है। इन प्रावधानों को व्यवहारिक बनाकर विचाराधीन कैदियों की संख्या और कम की जा सकती है।[5]

2.3 कारागार में आपराधिकता की समस्या

सामान्यतः कारागार में कैदियों के बीच गाली–गालौज, लड़ाई–झगड़े, मारपीट की घटनायें आदि देखने को मिलती है। कारावधि में एक लम्बे समय तक परिवारजनों से पृथक रहने के कारण वे अपने पारिवारिक तथा वैवाहिक जीवन से पूर्णतः वंचित रहते है। लैंगिक वासना मानव की स्वाभाविक, प्राकृतिक तथा शारीरिक आवश्यकता है जिसकी तृप्ति वैध तरीके से न होने पर व्यक्ति अवैध लैंगिक आपराधिकता की ओर प्रवृत्त होता है।[6]

कारागार में अपराध घटित होने का प्रमुख कारण कारागार अधिकारियों द्वारा बन्दियों के साथ अनावश्यक कठोर व्यवहार तथा भेदभाव के साथ व्यवहार है। परिस्थितिजन्य अपराधियों के द्वारा अपराध की घटनायें ज्यादा देखी जाती है। जेल में अप्राकृतिक मृत्यु के आँकड़े देखे तो पता चलता है कि जेल में कैदियों की अप्राकृतिक मौतो की संख्या 195 है जिनमें 5 महिला कैदी की अप्राकृतिक मौत शामिल है।इन अपराधों के निवारण हेतु वर्तमान में भारतीय नैतिक मूल्यों तथा आचार विचारों को ध्यान में रखते हुए यहा की कारागार व्यवस्था में इस प्रकार की एकान्त मुलाकातों को कोई स्थान नहीं दिया गया है । भारत के कारागार अधिनियम, 1894 मे कारावासियों को पैरोल पर छोड़े जाने सम्बन्धी समुचित प्रावधान है जिससे उन्हें अपने परिवार संग में रहना का समुचित अवसर मिलता है और उनका परिवार टूटने से बच जाता है।

2.4 कारागार में व्याप्त भ्रष्टाचार एवं अपराधीकरण सम्बन्धी समस्या

धनी और प्रभावशाली कैदी पैसे की ताकत पर कारागार में स्वर्ग भोगते है। उन्हें सभी सुविधाएँ इतनी सहजता से प्राप्त हो जाती है जैसे उनको प्राप्त करना उनका नैसर्गिक अधिकार हो। कारागारों में सभी कुछ पैसे से प्राप्त किया जा सकता है। जैसे अच्छा भोजन, कपड़े, टी0वी0, मोबाइल फोन यहाँ तक कि चरस, गांजा, अफीम, ब्राउन शुगर, शराब आदि।अधिकारियों द्वारा मुलाकातियों से बातचीत

की अनुमति, वकालतनामा भरने इत्यादि के लिये भी धन की अदायगी करनी पड़ती है। इस बात का आँखों साक्ष्य देश के कुछ राज्यों की कारागारों में देखने को मिलता है।

जेलों में व्याप्त भ्रष्टाचार के कुछ उदाहरणः प्रदेश की जेलों में सब कुछ सामान्य नहीं है। उत्तर प्रदेश की मुरादाबाद जेल का निरीक्षण करने पर पता चला कि वहाँ खाना खराब दिया जाता है। बंदी रक्षकों द्वारा अवैध वसूली की जा रही है। कारागार में क्षमता से अधिक कैदी रखे गये है। एक अन्य घटना नैनी जेल की है जहाँ जेलों में प्रतिबन्धित सामग्री, गुटखा, सिगरेट, मोबाइल, धारदार हथियारों का मिलना आश्चर्यजनक है। इसका मतलब जब जेलों में यह प्रतिबंधित सामग्री पहुँचती है तो कहीं न कहीं यह जेल प्राधिकारियों या कर्मचारियों की मदद से ही जेल में पहुँचता है।[7] ऐसा ही एक अन्य उदाहरण पटना (बिहार) की जेलों में देखने को मिलता है। यहाँ जेलों में प्रशासन और अपराधियों के गठजोड़ का सनसनी खोज का खुलासा हुआ है। जेल प्रशासन छापेमारी के समय अवैध सामानों को छिपाने के लिये कैदियों की मदद भी करते है। इस बात का खुलासा मारपीट के दौरान कैदियों ने ही किया। एक कैदी ने इस बात का दाँवा किया कि जेल वार्ड दो हजार में, शराब एक हजार में जेल में मँगायी जा सकती है। कैदियों का कहना है कि इस कारोबार को औरंगाबाद का कुख्यात अपराधी ढनढन सिंह चलाता है। इतना ही नहीं जेल में अवैध सामान पहुँचाने के एवज में जेल प्रशासन के लोगों को अपने पद के हिसाब से अपना–अपना हिस्सा लेते है।

जेलों में संगीन अपराधियों द्वारा अपने गैंग बना लिये जाते है और वे अपने वर्चस्व के लिए कैदियों एवं जेल अधिकारियों तक से मारपीट करते है। अतः कारागार में व्याप्त भ्रष्टाचार को कम करने के लिए भ्रष्टाचार करने वाले जेल कर्मियों के विरूद्ध कठोर कार्यवाही की जायें। जेल स्टाफ की कमी को पूरा किया जाये तथा अच्छी प्रशिक्षित व्यक्तियों की नियुक्ति की जाये।

2.5 चिकित्सा सुविधाओं का अभाव

कारागारों में अत्यधिक भीड़, समुचित भोजन की व्यवस्था न होना, पर्याप्त सफाई व्यवस्था न होना एवं स्वास्थ्य के अनुकूल वातावरण उपलब्ध न होने के कारण कैदी विभिन्न बीमारियों से ग्रसित हो जाते है और पर्याप्त चिकित्सा सुविधाओं के अभाव में कालकलपित हो जाते है। कारागारों में चिकित्सा पदाधिकारियों के पद रिक्त होने के कारण चिकित्सकों द्वारा कैदियों का उपचार न करने के कारण दवाईयों के अभाव में कैदियों को चिकित्सा सुविधायें उपलब्ध नहीं हो पाती है। कारागारों में क्षमता से अधिक कैदी होने की वजह से स्वस्थ कैदियों को भी बीमार कैदियों के साथ रहने के लिये विवश किया जाता है। मानसिक रूप से अस्वस्थ व्यक्तियों को जेल में रखा जाना अवैधानिक है। मानवाधिकार आयोग के भूतपूर्व अध्यक्ष न्यायमूर्ति श्री रंग नाथ मिश्र द्वारा सभी मुख्यमंत्रियों को अवगत कराया गया था कि 'मेन्टल हेल्थ एक्ट' जो कि 1 अप्रैल 1993 से प्रभावी है के अनुसार मानसिक रूप से अस्वस्थ व्यक्तियों को जेलों में रखना विधिविरूद्ध है।इस समस्या के निवारण हेतु योग्य व प्रशिक्षित चिकित्साधिकारियों की चिकित्सालय में नियुक्ति की जायें। कारागार अधिनियम, 1894 की धारा 37, 37क एवं 39ग में कैदियों के स्वास्थ्य सम्बन्धी व्यापक प्रावधान है। जिनका सही तरीके से क्रियान्वयन किया जाये।

2.6 कारागारों में महिला कारावासियों की समस्या

कारागार में महिला कैदियों की समस्याओं को कभी प्रमुखता से नहीं लिया गया है। यही कारण है कि कारागार व्यवस्था में सर्वाधिक उपेक्षा महिला बन्दियों के साथ ही होती है। यद्यपि कारागारों में महिलाओं की संख्या कम है लेकिन फिर भी सामाजिक स्थिति उन्हें उनके परिवार तथा परिचितो से दूर कर देती है जब वे जेल में होती है। शिक्षा की अज्ञानता तथा विधिक जागरूकता की कमी उन्हें कारागार में लम्बी सजावधि के लिये विवश कर देती है। एन0सी0आर0बी0[7], 2014 की रिपोर्ट के अनुसार देश में कुल महिला जेलों की संख्या 19 है। महिला कैदियों की बात करें तो कुल 17,681 (42 प्रतिशत) महिला कैदी जेलों में कैद है जिनमें कुल 5,403 महिला कैदी दोषसिद्ध हो चुकी है तथा 12,096 महिला कैदी विचाराधीन है।कारागारों में महिला कैदियों की देखरेख, सुरक्षा तथा उनकी स्त्री जनित आवश्यकताओं की उचित व्यवस्था रखना भी जेल प्रशासकों का प्रमुख दायित्व है।

3. कारागार प्रशासन तथा कैदियों की दशा में सुधार का न्यायिक प्रयास

कैदियों के अधिकारों की उत्पत्ति *ए0के0 गोपालन बनाम मद्रास राज्य* [8] के वाद से देखने को मिलती है। इस मामलें में पिटिशनर को निवारक निरोध अधिनियम 1950 के अधीन निरूद्ध करके जेल में बन्द कर दिया गया था। पिटिशनर के द्वारा संविधान के अनु0 21 में प्रयुक्त ''विधि द्वारा विहित प्रक्रिया'' पदावली के ऊपर विवाद उठाया जो कि एक 'ऋजु व उचित' प्रक्रिया को बताती है। यह न केवल व्यक्तियों के दैहिक स्वतन्त्रता से वंचित किये जाने की प्रक्रिया है जो सरकार द्वारा अभिनिर्धारित की गई है जैसा कि यह ए0के0 गोपालन के वाद में देखने को मिलता है जहाँ उसे पूरी तरह से उसकी 'दैहिक स्वतन्त्रता' से वंचित कर दिया ***गया,*** जबकि संचार/आन्दोलन का अधिकार उसे नहीं मिला जो कि एक मौलिक अधिकार था। महाराष्ट्र राज्य बनाम प्रभाकर पांडूरंग[9] के दूसरे महत्वपूर्ण वाद में न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि दूसरे मौलिक अधिकारों पर केवल 'निरोध' के द्वारा प्रतिबन्ध नहीं लगाया जा सकता है। इस प्रकार धीरे–धीरे विभिन्न वादों के निर्णीत हो जाने से कैदियों के विभिन्न अधिकारों की उत्पत्ति होती गयी और विकास होता गया।

कारागार की दुर्व्यवस्था तथा कारावासियों के प्रति अन्याय और अत्याचार के विरूद्ध उच्चतम न्यायालय तथा विभिन्न उच्च न्यायालयों के समक्ष अनेक मामले रिट याचिकाओं, अपील फाइल करने आदि के रूप में विचारार्थ आये है। जिनमें कारागार सुधार पर बल दिया जाता रहा है। परन्तु दुर्भाग्यवश कारागारों की स्थिति अत्यन्त दयनीय होने के साथ–साथ उनमें भ्रष्टाचार और दुर्व्यवहार व्याप्त है। परन्तु विगत कुछ वर्षो में जेलों के सुधार के लिये पत्रकारों, न्यायाधीशों तथा राज्य सरकारों का ध्यान आकर्षित हुआ है। जेलों के सुधार की दशा में भारत के उच्चतम तथा उच्च न्यायालयों ने पर्याप्त रूचि दर्शायी है। कारागारों में प्रशासन तन्त्र की मनमानी और लापरवाही से त्रस्त कैदियों को उनके मौलिक अधिकार तथा मानवीय हक वापस दिलाने में उच्चतम न्यायालय ने सक्रिय भूमिका निभाई है।

माननीय उच्चतम न्यायालय ने अपने निर्णयों में कारागार प्रशासन के विभिन्न पहलुओं को अभिकथित किया है जिसमें कुछ ऐसे सामान्य सिद्धान्तों को बताया है जो कारागार व हिरासत के विषय में है। न्यायालय ने अपनी निर्वचन की शक्ति के माध्यम से विभिन्न समितियों, आयोगों की रिपोर्ट**,** भारतीय संविधान के कुछ प्रमुख अनुच्छेदों**,** जेल से सम्बन्धित विधियों आदि का हवाला देते हुये कारागार में बन्द कैदियों के प्रति**,** कारागार प्रशासन को संवेदनशील रहने तथा मूलभूत अधिकारों को संरक्षित करने का आदेश दिया है। कारागार प्रशासन से सम्बन्धित यदि न्यायपालिका के विभिन्न निर्णयों का अवलोकन किया जाये तब उनके निर्णय में मुख्यतः तीन प्रमुख सिद्धान्त, समाने आते हैः–

1. कोई व्यक्ति यदि कारागार में है तो उसकी अभिव्यक्ति की आजादी समाप्त नहीं हो जाती है।

2. कोई व्यक्ति कारागार की सीमाओं में रहते हुये भी सभी मानवाधिकारों का हक रखता है।
3. यह न्यायोचित नहीं है कि जो व्यक्ति पहले से ही कारागार में बन्द है उसकी पीड़ा और दर्द को और बढ़ाया जाए।

जेल व कैदियों से सम्बन्धित विभिन्न महत्वपूर्ण वाद इस प्रकार हैः–
डी0बी0ए0 पटनायक बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य[10] के मामले में पिटिशनर जो नक्सलपन्थी में अपराधी ठहराये गये और वे विशाखापटनम् जेल में सजा काट रहे थे। सशस्त्र पुलिस गार्ड जेल के चारों तरफ पहरा देने के लिए रखे गये थे और जेल की दीवारों पर तार लगाकर उनमें बिजली दौड़ाई गई थी। पिटिशनरों ने यह तर्क दिया कि जेल अधिकारियों द्वारा अपने गये इन उपायों से उनके अनु0 21 में प्रदत्त अधिकार का अतिक्रमण होता है वे असंवैधानिक नहीं है। न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि कोई भी व्यक्ति केवल सिद्धदोष होने के कारण यदि उसे जेल में रखा जाता है तो वह अपने कुछ मूल अधिकारों से वंचित हो जाता है।

प्रस्तुत मामले में निर्णय दिया गया कि सिद्धदोष व्यक्तियों पहरा देने के लिए रखने तथा दीवारों पर तार लगाकर उनमें बिजली दौड़ने से उनके मूल अधिकार पर आघात नहीं होता था। इन उपायों का उद्देश्य कैदियों को जेल से भागने से रोकना था जेल में नक्सलपंथी कैदियों की संख्या अधिक थी। उनमें से कुछ जेल से भाग भी गये थे। ऐसी दशा में जेल में कमरे की व्यवस्था अपर्याप्त थी इसलिए उक्त व्यवस्था अपनाई गई जिससे कैदी जेल से भाग न सकें। जेल की दीवारों पर बिजली के तारों के लगाने से भी उनके मूल अधिकारों का हनन नहीं होता है। यह एक निरोधात्मक उपाय है और जब तक कैदी जेल से भागने का प्रयास नहीं करता है उससे उसको कोई हानि नहीं होती है। यदि वह भागने के प्रयास में स्वयं उनके पास जाकर अपनी मृत्यु को बुलाता है तो इसमें उन बिजली के तारों का कोई दोष नहीं है। इन तारों के लगाने मात्र से किसी कैदी की मृत्यु नहीं होती है उसकी मृत्यु तभी होगी जब वे उसका उल्लंघन कर जेल से भागने का प्रयास करेंगे।

उच्चतम न्यायालय ने एम0एच0 हॉसकाट बनाम महाराष्ट्र राज्य[11] के मामल मे यह अभिनिर्धारित किया है कि सिद्धदोष व्यक्ति को उच्च न्यायालय में ''अपील फाइल'' करने का मूल अधिकार है तथा उसे निर्णय की प्रतिलिपि निःशुल्क पाने तथा उच्च न्यायालय ने निर्णय 1973 में दिया था किन्तु उच्चतम न्यायालय में अपील 4 वर्ष बाद फाइल की गई। पिटिशनर के अनुसार उस विलम्ब का कारण यह था कि उसे 1973 के निर्णय की प्रतिलिपि 1978 में मिली थी। बाद में पता चला कि उच्च न्यायालय ने उसे देने के लिए जेल को निर्णय की प्रतिलिपि भेजी थी। लेकिन वह उसे नहीं प्राप्त हुई थी। जेल सुपरिटेन्डेन्ट ने कहा कि प्रतिलिपि उसे दी अवश्य गई थी, किन्तु सरकार को क्षमादान के लिए आवेदन देने के लिए उससे वापस ले ली गई थी। यद्यपि उच्च न्यायालय ने उसकी अपील खारिज कर दी, क्योंकि न्यायालय अधीनस्थ न्यायालयों के समवर्ती निष्कर्षो में हस्तक्षेप नहीं करता है।

उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि सिद्धदोष व्यक्ति का अपील का अधिकार उचित प्रक्रिया तथा नैसर्गिक न्याय का आवश्यक अंग है तथा उसे निर्णय की प्रतिलिपि निःशुल्क पाने तथा ''निःशुल्क कानूनी सहायता'' पाने का भी अधिकार प्राप्त है। न्यायाधिपति श्रीकृष्ण अय्यर ने बहुमत का निर्णय सुनाते हुये यह अवलोकन कि कि ''निःशुल्क कानूनी सहायता राज्य का कर्त्तव्य है न कि राज्य का दान।''

भारतीय संविधान का अनु0 39क भी विधिक सहायता उपलब्ध कराने के सम्बन्ध में प्रावधानित है। मुफ्त विधिक सहायता द्वारा कारागार में बन्द कैदियों को अशिक्षा, निर्धनता, सामाजिक पिछड़ापन आदि के कारण अपनी बात को न्यायालय में रखने में काफी समस्या आती है। जिसके कारण वह अनावश्यक ही कारागार में बन्द रहते है। उच्चतम न्यायालय द्वारा 'एम0एच0 हॉसकाट' के वाद में निःशुल्क विधिक सहायता को मूल अधिकार घोषित किया है। दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 304 भी इसी से सम्बन्धित है तथा विधिक सहायता उपलब्ध कराने के लिए विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम 1987 का गठन भी किया गया। इस निर्णय का प्रभाव यह रहा है की एन0सी0आर0बी0 की 2014 की रिपोर्ट से पता चलता है कि कैदियों को मुफ्त विधिक सहायता उपलब्ध कराने सम्बन्धी सुधारों की दिशा में अच्छा प्रयास हुआ है।

उच्चतम न्यायालय ने सुनील बात्रा बनाम दिल्ली प्रशासन[12] के मामले में पिटिशनर जो की तिहाड़ जेल में बन्द था जो मृत्युदण्ड की सजा भुगत रहा था। उसने अपने ''एकान्त कारावास'' से इस आधार पर चुनौती दी गई कि इसके परिणामस्वरूप इनके ''दैहिक स्वतन्त्रता'' के अधिकार का अतिक्रमण होता है। कारागार अधिनियम की धारा 30 यह उपबन्धित करती है कि प्रत्येक कैदी की जिसे 'मृत्युदण्ड' दिया गया है। एकान्त कारावास का दण्ड दिया जा सकता है। पिटिशनर ने यह तर्क दिया कि धारा 30 जेल अधिकारियों को कैदियों को एकान्त कारावास का दण्ड देने का अधिकार नहीं देती है। एकान्त कारावास भारतीय दण्ड संहिता की धारा 74 व 75 के अधीन स्वयं एक मौलिक दण्ड है जिसे केवल सक्षम न्यायालय ही दे सकता है।उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि सिद्धदोष शक्तियों को भी दैहिक स्वतन्त्रता का मूल अधिकार प्राप्त है और विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के बिना उन्हें उनसे वंचित नहीं किया जा सकता है।अतः इस मामले में कारागार अपराधों के लिये 'एकान्त कारावास' से दण्डित न लेने के अधिकार के बारे में संरक्षण कैदियों को प्रदान किया गया है।

एक जनहित याचिका द्वारा हुस्न आरा खातून बनाम बिहार राज्य[13] के वाद फाइल किया गया था। इस मामले को उच्चतम न्यायालय की अधिवक्ता कपिला हिंगोरानी ने विचाराधीन कैदियों की ओर से जेल में उनके अवैध निरोध के विरूद्ध बन्दी प्रत्यक्षीकरण की याचिका द्वारा उच्चतम न्यायालय में प्रेषित किया। इस वाद में यह शिकायत की थी कि बिहार जेल में 10 वर्षो से विचाराधीन कैदियों को लम्बे समय तक बिना परीक्षण के बन्द रखा गया था। इस याचिका पर सुनवाई करते हुये न्यायमूर्ति पी0एन0 भगवंती ने विचाराधीन कैदियों की दुर्दशा के प्रति अपनी सहानुभूति व्यक्त करते हुये कहा

''न्यायालय द्वारा विचारण की प्रतिक्षा में निरूद्ध पुरूषों, महिलाओं और बालकों की एक बड़ी संख्या जेल के सीखचो के अन्दर बन्द है। इनमें से अनेक के अपराध इतने तुच्छ है कि उनके लिये सम्भवतः कुछ ही महीने या एकाध वर्ष की सजा ही दी जा सकती थी। परन्तु दुर्भाग्य से मानवीयता द्वारा विस्मृत व्यक्ति अपनी स्वतन्त्रता खोकर तीन से लेकर 10 वर्षो तक की अवधि से जेलों में सड़ रहे है। देश की न्याय प्रणाली के लिये यह लज्जा की बात है कि वह पुरूष और महिलाओं को इतने लम्बे समय तक बिना विचारण के जेलों में जीवन बिताने के लिये बाध्य करें। एक ओर जब हम मानव अधिकारों के संरक्षण और प्रवर्तन की पुकार कर हे है तथा मूलभूत स्वतन्त्रताओं को बनाये रखने की दुहाई दे रहे है, तो क्या हम जेल में वर्षो से रखे गये इन असंख्य अनाम व्यक्तियों को मानव अधिकारों से वंचित नहीं कर रहे है, जिनके विरूद्ध अपराध संभवतः सिद्ध भी न हो और उन्हें निर्दोष पाकर छोड़ना पड़े।''

इस ऐतिहासिक मामले में उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि विचारण की प्रतीक्षा में अपराधियों का दीर्घ परिरोध स्वयं में भारतीय संविधान के अनु0 21 के उपबन्धों का उल्लंघन है जो जीवन तथा वैयक्तिक स्वतन्त्रता को संरक्षित करते है। अतः न्यायालय ने ऐसे सभी कारावासियों को जिन्हें विचारण के बिना कारागार में रखा गया था, तत्काल रिहा करने का आदेश दिया।

प्रेमशंकर शुक्ला बनाम दिल्ली प्रशासन[14] के मामलें में पंजाब पुलिस रूल्स के कुछ प्रावधानों की विधिमान्यता को इस आधार पर चुनौती दी गयी थी कि वे भारतीय संविधान के अनु0 14, 19 व 21 का अतिक्रमण करते है। अतः वे असंवैधानिक है। पंजाब पुलिस रूल्स के अधीन प्रत्येक कैदी को जेल से न्यायालय लाते समय हथकड़ी लगाकर लाने का उपबन्ध था। न्यायाधिपति श्री कृष्ण अय्यर ने बहुमत का निर्णय सुनाते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि पंजाब पुलिस रूल्स संविधान के अनु0 14, 19 व 21 का अतिक्रमण करते है। अतः वे असंवैधानिक है। न्यायालय ने निर्णय दिया कि हथकड़ी का प्रयोग तभी किया जा सकता है जब कैदी के पुलिस अभिरक्षा से भागने का 'स्पष्ट और वर्तमान खतरा' हो और ऐसा हो तो उसके कारणों का स्पष्ट उल्लेख किया जाना चाहिए। इस प्रकार विशिष्ट परिस्थितियों में हथकड़ी का प्रयोग किया जा सकता है किन्तु अभिरक्षक प्राधिकारी को इसके लिये कारणों का उल्लेख करना आवश्यक होगा अन्यथा अनु0 21 के अधीन विहित प्रक्रिया अनुचित और अवैध हो जायेगी।

किशोर सिंह बनाम राजस्थान राज्य[15] के मामले में एक कैदी को, जिसे न्यायालय के समझ पेश करने का आदेश दिया गया था, जेल से न्यायालय लाते समय उसे पुलिस जनों ने बेरहमी से मारा–पीटा और उसे जेल में इस आधार पर एकान्त कारावास में रखा गया कि और हथकड़ी पहनायी गई कि वह जेल में मटरगश्ती करता था तथा असभ्य व्यवहार करता तथा अपना हिस्ट्री–टिकट फाड़ देता था। इस मामले में राजस्थान कारागार अधिनियम और राजस्थान कारागार अधिनियम की विधिमान्यता को इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि वह अनु0 14, 19 व 21 का अतिक्रमण करते है। न्यायाधिपति श्रीकृष्ण अय्यर ने बहुमत का निर्णय सुनाते हुये यह अभिनिर्धारित किया कि किसी कैदी को इतने तुच्छ आधारों पर 8 से 11 माह तक हथकड़ी के साथ एकांतवास में रखना अमानवीय कार्य है और अनु0 21, 19 और 14 के अधीन मानव प्रतिष्ठा पर आघात है। तृतीय श्रेणी (प्प्तक ***डिग्री***) अर्थात् क्रूर दण्ड प्रणाली अनु0 21 का अतिक्रमण करती है। न्यायालय ने आदेश दिया कि यह दण्ड समाप्त कर देना चाहिए और सरकार को पुलिसजनो के प्रशिक्षण में सुधार करना चाहिए ताकि वे मानव प्रतिष्ठा का आदर करना सीखें।

प्रभा दत्त बनाम भारत संघ[16] के वाद में हिन्दुस्तान टाइम्स की चीफ रिपोर्टर को रंगा–बिल्ला के साक्षात्कार की अनुमति से तिहाड़ जेल प्रशासन द्वारा इन्कार कर दिया गया था। इस मामले मूें निर्णय देते हुए माननीय उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि प्रेस की स्वतन्त्रता में सूचनाओं तथा समाचारों को जानने का अधिकार भी शामिल है और बिना किसी युक्तियुक्त कारण के जेल प्रशासन द्वारा इन्कार करना न्यायोचित नहीं है।

रूदलशाह बनाम बिहार राज्य[17] भारतीय संविधान के अनु0 21 के अधीन व्यक्ति को प्राप्त वैयक्तिक स्वतन्त्रता के अधिकार का उल्लंघन होने पर पीड़ित व्यक्ति को हानिपूर्ति दिलाने का आदेश दिया। इस मामले में रूदलशाह नामक कैदी को राज्य के अधिकारियों की लापरवाही के कारण दोषमुक्ति के बाद भी उसे चौदह वर्षो तक जेल में रखा गया था। रूदलशाह को सत्र न्यायालय ने दिनांक 30 जून, 1968 को ही दोषमुक्त कर दिया था किन्तु कारागार से उसे 14 वर्ष बाद दिनांक 16 अक्टूबर 1982 को रिहा किया गया था और वह भी न्यायालय के हस्तक्षेप के बाद।उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि नागरिकों के संवैधानिक अधिकारों के उल्लंघन होने पर न्यायालय को प्रतिकर दिलाने की शक्ति प्राप्त है। प्रस्तुत मामले में न्यायालय ने निर्णय दिया कि बिहार राज्य सरकार कैदी रूदलशाह को क्षतिपूर्ति के रूप में 30,000/– रूपये का भुगतान करें क्योंकि राज्य के अधिकारियों की लापरवाही के कारण ही उसे इतने वर्षो तक दोषमुक्त हो जाने के बाद भी कारागार में रखा गया था।

नीलवती वेहरा बनाम उड़ीसा राज्य [18] के मामले में मृतक एक 20 वर्ष का नवयुवक था जिसे पुलिस ने 1 दिसम्बर को शाम 8 बजे किसी अपराध की जॉच के सिलसिले में गिरफ्तार और हथकड़ी लगाकर थाने में बन्द कर दिया। थाने में कान्सटेबल का पहरा था। 2 दिसम्बर को हथकड़ी लगी हुई दशा में उसकी लाश जिसके कई चोटे थी, रेलवे लाइन के किनारे पड़ी पायी गई। न्यायालय द्वारा जॉच कराने पर मृतक की मृत्यु पुलिस अभिरक्षा में मारने के कारण हुई थी। उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि अनु0 21 के अधीन सिद्धदोष व्यक्तियों, कैदियों तथा परीक्षणाधीन कैदियों को भी मूल अधिकार प्राप्त है और यदि उनके अधिकारों का राज्य द्वारा या उसके सेवकों द्वारा उल्लंघन किया जाता है तो न्यायालय को प्रतिकर प्रदान करने की शक्ति प्राप्त है। राज्य का यह सुनिश्चित करना कर्त्तव्य है, कि पुलिस अभिरक्षा या जेल में नागरिको को उनके अनु0 21 में प्रदत्त अधिकारों से केवल विधि नियमों के अनुसार ही वंचित किया जाये। अतः न्यायालय ने मृतक की मॉ को 1,30,000/– रूपये का प्रतिकर देने का आदेश दिया। न्यायालय ***ने*** *राममूर्ति बनाम कर्नाटक राज्य*[19] मामलें में कारागार अधिनियम की धारा 24(3), 26(2), 26(3), 29, 35(2) का हवाला देते हुये माननीय उच्चतम न्यायालय के द्वारा स्वस्थ पर्यावरण तथा सामयिक चिकित्सा सेवाओं के अधिकार को कैदी में निहित माना।

गुजरा***त*** राज्य बनाम माननीय गुजरात उच्च न्यायालय [20] के मामलें में कैदियों को दण्ड के प्रश्न पर गम्भीर श्रम में लगाये जाने के सम्बन्ध में निर्णीत किया कि ऐसे व्यक्तियों को न्यूनतम मजदूरी के कानून के आधार पर मजदूरी दी जानी चाहिए अन्यथा यहाँ संविधान के अनु0 23 तथा मानवाधिकारों की आर्थिक सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों की अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा के अनु0 8 का उल्लंघ***राष्ट्र***न होगा।

अख्तरी बी0 बनाम मध्य प्रदेश राज्य [21] के मामले में अभियुक्ता जो कारावासित थी, एक वृद्ध एवं अपंग महिला थी तथा उसके पुत्र तथा पुत्रवधू दोनों की मृत्यु हो जाने के कारण एयके तीन वर्षीय नाती की देखरेख करने वाला कोई भी व्यक्ति नहीं था तथा कारागार नियमों के अनुसार तीन वर्ष से अधिक आयु के बालको को कारावासिनी के साथ रहने देने की अनुमति दी जा सकती थी। उच्चतम न्यायालजय ने अपीलार्थिनी की स्थिति को देखते हुए उसे कारावासित किये जाने के औचित्य पर विचार किया जाना अनावश्यक समझा तथा उनकी जमानत पर उन्मुक्ति की जाने के आदेश दिये। न्यायालय ने अपने निर्णय में स्पष्ट किया कि अनु0 21 के अधीन जीवन के अधिकार में केवल जीवित रहने का अधिकार ही शामिल नहीं है बल्कि मानवीय जीवन सुनिश्चित कराने का राज्य पर दायित्व है। यदि अपीलार्थिनी को कारावास में रहने दिया जाता है, तो उस नन्हें बालक की देखरेख एवं सुश्रुषा करने वाला कोई नहीं होगा। अतः अपीलार्थिनी को बच्चे से अलग रखना केवल उस बालक के लिये ही अहितकारी होगा वरन् समाज के हितों के भी प्रतिकूल होगा।

महाराष्ट्र राज्य बनाम आशा अरूण गवली[22] के मामले में महाराष्ट्र राज्य को यह निर्देशित किया गया कि वह कैदियों के लिये कारागार में सुविधाओं सम्बन्धी नियम, 1962 में उचित परिवर्तन करके यह सुनिश्चित करें कि कैदियों से मिलने आने वाले आगुन्तकों का पूरा ब्यौरा जेल रजिस्टर में व्यवस्थित ढंग से लिपिबद्ध किया जाये ताकि पहुँच रखने वाले बाहुबली कैदियों को बाहरी अवांछित तत्वों से मिलने या साठगाठ करने का अवसर न मिल पाये। इस मामले में न्यायालय का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया गया था कि बम्बई का कुख्यात अपराधी अरूण गवली जेल के भीतर खर्चीली पार्टियाँ आयोजित करके बाहरी अवांछित विधि विरोधी व्यक्तियों से मिलकर आपराधिक षडयन्त्र रचता था। जो न्यायालय के अनुसार जेल अधिकारियों की मिलीभगत के तथा

उनके सक्रिय सहयोग के बिना सम्भव नहीं था। अतः उच्चतम न्यायालय ने महाराष्ट्र उच्च न्यायालय द्वारा अतिरिक्त मुख्य सचिव, पुलिस आयुक्त तथा पुलिस महानिरीक्षक प्रत्येक पर 25,000/– रूपये की शास्ति अधिरोपित की जाने को न्यायोचित ठहराते हुए जेल अधीक्षक तथा अन्य सम्बन्धित जेल अधिकारियों के विरूद्ध आपराधिक कार्यवाही संस्थित की जाने के निर्देश का अनुसमर्थन किया। जेल अधिकारियों की लापरवाही का गम्भीरतम मालमा होने के कारण अधिकारिक का दण्डित होना उचित था साथ ही न्यायिक अधिकारियों को भी समय–समय पर जेल का निरीक्षण करके अपनी रिपोर्ट राज्य सरकार को भेजने हेतु कहा गया ताकि अनुशासनहीन कैदियों पर नियन्त्रण रखा जा सकें।

कल्याणचन्द सरकार बनाम राजेश रंजन उर्फ पप्पू यादव तथा अन्य[23] के वाद में जेल प्राधिकारी बाहुबली विचाराधीन कैदी पप्पू यादव जिसके विरूद्ध हत्या का प्रकरण दर्ज था, की अवैध गतिविधियों को नियन्त्रण में रखने में पूरी तरह विफल रहे थे। इसीलिए उच्चतम न्यायालय ने संविधान के अनु0 142 के अन्तर्गत प्राप्त अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुये उसे बिहार राज्य के बाहर किसी अन्य जेल में हस्तान्तरित किये जाने के निर्देश दिये यद्यपि ऐसे अन्तर्राज्यीय जेल स्थानान्तरण का बिहार जेल मैनुअल में कोई प्रावधान नहीं था। न्यायालय ने विचाराधीन कैदियों को मौलिक अधिकारों के विषय में टिप्पणी करते हुए अभिकथन किया कि उन्हें संविधान के अनु0 21 के अन्तर्गत प्राप्त अधिकार आत्यांतिक नहीं है तथा बाहरी व्यक्तियों से मिलने के उनके अधिकार पर जेल पुस्तिका तथा अन्य संविधियें द्वारा युक्तियुक्त प्रतिबन्ध लगाये जा सकते है। न्यायालय ने निर्णीत किया कि जहाँ विचाराधीन कैदी जेल प्रशासकों के नियन्त्रण के बाहर हो और खुले आम विधि सम्मत शासन का उल्लंघन कर रहा हो और कानून को चुनौती दे रहा है वहाँ न्यायालय मूक दर्शक बन कर उसकी गतिविधियों को जारी रहने नहीं दे सकता और ऐसी दशा में न्यायालय का हस्तक्षेप पूर्णतः उचित होगा। उच्चतम न्यायालय के इस निर्देशानुसार पप्पू यादव को बिहार जेल से हटाकर महाराष्ट्र की जेल में स्थानान्तरित कर दिया गया।

आर0डी0 उपाध्याय बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य व अन्य [24] ***के वाद में*** उच्चतम न्यायालय ने महिला कैदियों की स्थिति के प्रति गहरी चिन्ता व्यक्त करते हुये कहा कि जो महिला कारावास अपने शिशुओं के साथ जेल में कारावास भोग रही है, उनके मामलें प्राथमिकता के आधार पर निपटाये जाने चाहिए ताकि उनके बच्चे के पालन–पोषण, आश्रय, चिकित्सीय सुविधा, शिक्षा तथा मनोरंजन सुविधाओं के अधिकारों को सुरक्षित रखा जा सकें। न्यायालय ने यह भी निर्देश दिये कि जिन गर्भवती महिला कैदियों की प्रसूति कारागार में होती है उनके शिशु के जन्म प्रमाण पत्र में 'कारागार' को जन्मस्थान के रूप में नहीं दर्शाया जाना चाहिए। न्यायानय ने आदेशित किया कि छः वर्ष से अधिक आयु के बालक को उसकी कारावासी माता के साथ जेल में नहीं रखा जाना चाहिए तथा इस सम्बन्ध में विभिन्न राज्यों को अपनी जेल पुस्तिका में आवश्यक संशोधन कर लेना चाहिए।

एस0पी0 आनन्द बनाम मध्य प्रदेश राज्य[25] **के** मामलें में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय ने कारागार के बन्दियों के अधिकारों की विस्तृत विवेचना करते हुये विनिश्चित किया कि उन्हें ***दैहिक स्वतंत्रता*** के अधिकार को छोड़कर शेष सभी मूलभूत अधिकार प्राप्त है। उनके रखे जाने के स्थान साफ–सुथरे और स्वस्थ्यपृद वातावरण युक्त होने चाहिए क्योंकि यह उनका मूलभूत अधिकार है।

डी0के0 बसु बनाम पश्चिमी बंगाल राज्य और अन्य[26] के वाद में जस्टिस टी0एस0 ठाकुर और आर0 भानुमती की पीठ द्वारा निर्णय सुनाते हुए जेलों के सम्बन्ध में विस्तार से दिशा निर्देश जारी करते हुए कहा किः

1. राज्य सरकारे जेलों में और संवेदनशील पुलिस थानों में सी0सी0टी0वी0 कैमरा लगवाने की व्यवस्था करें, मानवाधिकार न्यायालयों की स्थापना, विनिर्दिष्टीकरण सुनिश्चित करें, जेलों/पुलिस थानों के लिए नान आफिशियल विजिटर्स की नियुक्ति हेतु विचार करें। अभिरक्षा मे मृत्यु या यातना के लिए दोषियों का अभियोजन सुनिश्चित करें।
2. राज्य सरकारें मानवाधिकारों न्यायालय के गठन हेतु गम्भीरता से विचार करें।

इनरि इनहयूमन कंडीशन 1382 प्रिजन, 2016 [27] **के** वाद में जेल सुधार की आवश्यकता को देखते हुये जस्टिस मदन वी लोकर व आर0के0 अग्रवाल की पीठ ने कहा कि कैदी भी मानव प्राणी है तथा वे भी अन्य मानवों की तरह सम्मानपूर्ण व्यवहार के हकदार है। कारागारों की समस्याओं, जैसे अत्यधिक भीड़, विचारण में देरी, अभिरक्षा में मृत्यु कर्मचारियों की अपर्याप्तता, अपर्याप्त भोजन तथा कपड़ो की समस्या इत्यादि पर विचार करते हुए कहा कि हम पिछले 35 वर्षो में इन समस्याओं पर विचार कर रहे है। परन्तु कोई समाधान नहीं ढूँढ़ पाये है। इस सम्बन्ध में न्यायालय ने निर्देश जारी किये हैः–

1. विभिन्न राज्यों द्वारा गठित विचाराधीन कैदियों के पुनर्विलोकन समिति त्रैमासिक रूप से अपनी बैठकें करेगी तथा प्रथम बैठक 31 मार्च 2016 से पूर्ण होगी।
2. दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 436 तथा 436क के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए ऐसे व्यक्ति जो गरीबी के ***कारण*** जमानत प्रत्याभूति देने में असमर्थ है केवल इसी कारण ही कैद में नहीं रहेंगे।
3. विचाराधीन कैदियों को विशेष रूप से गरीबो तथा अकिंचनो को पर्याप्त संख्या में सक्षम अधिवक्ता उपलब्ध कराये जाने चाहिए।
4. शमनीय अपराधों में विचाराधीन कैदियों के विचारण के बजाय मामले के शमन किये जाने की सम्भावनाओं को देखा जाना चाहिए।
5. गृह मंत्रालय द्वारा केन्द्रीय कारागार, जिला कारागार तथा महिला कारागारों के प्रबन्ध के लिये सूचना तकनीक का प्रयोग करना चाहिए, जिससे कि कैदियों तथा कारागारों का अच्छा तथ प्रभावी प्रबन्ध किया जा सकें।
6. गृह मन्त्रालय द्वारा मॉडल जेल मैनुअल, 2016 के क्रियान्वयन की वार्षिक समीक्षा करायी जानी चाहिए।

अग्रेतर न्यायालय द्वारा सचिव महिला एवं नाल विकास मंत्रालय को नोटिस जारी करते हुए कहा गया कि ऐसे जुवेनाइल जो प्रेक्षण गृह, विशेष गृह या अन्य किसी सुरक्षित स्थान पर अभिरक्षा में है, के सम्बन्ध में मॉडल मैनुअल के समान एक मैनुअल बनाया जाना सुनिश्चित किया जाना चाहिए।

उपरोक्त वि"ले'I.I से यह बात प्रगट होती है कि जेल में सजा काट रहे कैदी को वे सभी मूलभूत अधिकार नहीं दिलाये जा सकते जो सामान्य नागरिक को प्राप्त है लेकिन इसका अर्थ यह बिल्कुल नहीं है कि एक कैदी को उसके अपने मूलभूत अधिकारों से पूर्णतः वंचित कर दिया जाये।उपरोंक्त निर्णयों के प्रकाश में हम यह कह सकते है कि न्यायपालिका कैदी अधिकारों के संरक्षक के रूप में सजग प्रहरी की तरह कार्य कर रही है। किन्तु फिर भी न्यायालय को इस में आगे प्रयास करना होगा क्योंकि केवल निर्णय सुना दिये जाने मात्र से न्यायापालिका का कर्तव्य समाप्त नहीं हो जाता है उपरोक्त का सुक्ष्मावलोकन करने पर यह बात स्वतः सिद्ध हो जाती है कि भारतीय न्यायपालिका लोगों के मानवाधिकारों के लिए सचेत तथा संवेदनशील रही है।

4. निष्कर्ष

न्यायपालिका के द्वारा दिये गये निर्णयों का अवलोकन करने पर यह

इंगित होता है कि न्यायपालिका कैदियों के मानवाधिकारों के संरक्षक के रूप में कार्य कर रही है। जबकि इस सम्बन्ध में कार्यपालिका एवं विधायिका अपने कर्तव्यों में विफल रही है। भारतीय उच्चतम न्यायलय कारागार प्रशासन तथा कैदियों की दशा के संबध में सुधारात्मक उपायों के साथ आगे आया है तथा विधायिका एवं कार्यपालिका को इस सम्बन्ध में अपने न्यायिक सक्रियता रूपी अस्‍ = से बार दूबार आगाह करने का प्रयास किया है तथा सभी मूल्यवान अधिकारों में बहुमूल्य प्राण एवं दैहिक स्वतन्त्रता के संरक्षण के नये उपचारों को स्थापित किया है। न्यायपालिका नागरिक अधिकारों की सजग प्रहरी है तथा कोई व्यक्ति किसी अपराध के लिए दोषसिद्ध हो जाने मात्र से ही नागरिक या मानव की श्रेणी से बाहर नहीं हो जाता है। इसी तथ्य को स्वीकार करते हुए न्यायपालिका के द्वारा कैदियों के अधिकारों के संरक्षण के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण निर्णय दिये है तथा उन्हें संरक्षित किये जाने का प्रयास किया है।

भारतीय न्यायालय कैदियों के पक्ष में शब्द और भाव दोनों से मानवाधिकारों की संकल्पनाओं को कार्यान्वित करने में लगे है, न्यायालयों ने कानूनी परामर्श लेने के अधिकार, तीव्र गति से विचारण का अधिकार पैरो में बेड़िया न पहनाना, जेलों में पुस्तके पढ़ने का अधिकार आदि अनेको अधिकारो को न्यायालय द्वारा मान्यता प्रदान कर प्रवर्तित कराया गया है। कारागार व्यवस्था के सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि अधिकांश बन्दी या निरोध में रखे गये व्यक्ति कारावधि के पश्चात् एक पुनः सामान्य जीवन बिताने के इच्छुक होते है तथा केवल पॉच या दस प्रतिशत कारावासी ही रिहाई के पश्चात् आपराधिक गतिविधियों में लिप्त रहना पसन्द करते है क्योंकि वे स्वाभावतः ही समाज विरोधी प्रवृत्ति के होते है। इसलिए सुधार योग्य बन्दियों को उनके पुनर्वास की सुविधायें उपलब्ध कराना कारागार प्रशासन का मुख्य लक्ष्य होना चाहिए। यह तभी सम्भव है जब ऐसे कारावासियों को पैरोल रिहाई पर की सुविधा प्रदान की जाये तथा परिवारजनों से मिलाई के अधिकाधिक अवसर उपलब्ध कराये जाये ताकि परिवार से उनका सतत् सम्पर्क बना रहे और वे पारिवारिक समस्याओं आदि से अवगत हो। भारत में व्यवसायिक अपराधी न्याय निर्णयन में विलम्ब का नाजायज फायदा उठा रहे है इस हेतु त्वरित न्याय की आवश्यकता पर प्राथमिकता से ध्यान दिया जाना आवश्यक है।

हाल ही के वर्षो में कैदियों के अन्तर्निहित अधिकारों तथा जेलो के उचित प्रशासन के जेल प्रशासन में काफी सुधार हुआ है। यद्यपि वर्तमान जेल प्रशासन की व्यवस्था को बदले जाने की आवश्यकता है। दाण्डिक विधि में अनिवार्यतः संशोधन किया जना चाहिए तथा एक नये जेल अधिनियम का अधिनियमन एंव सभी जेल मैनुअल को संशोधित किये जाने की आवश्यकता है। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि भारतीय न्यायपालिका को जेल व्यवस्था के सुधार के लिए अपने रचनात्मक कार्यो को जारी रखना होगा। इस प्रकार न्यायपालिका, विधायी प्रयासों के द्वारा कारागार तथा कैदियों की दशाओं में सुधार तो हुए है परन्तु उक्त सुधार अपने आप में एक पर्याप्त कदम नहीं कहे जा सकते है। इस सम्बन्ध में आगे प्रयास किया जाना चाहिए जेलो में प्रशिक्षण और पुर्नवास के सम्बन्ध में केवल मौखिक बहस पर्याप्त नहीं है इसके लिए सतह पर कार्य करना होगा। जो कि उत्साह तथा दृढ़ निश्चय द्वारा ही सम्भव है। हम इस क्षेत्र में विफलता का खतरा मोल नहीं ले सकते। एक ठोस कारागार व्यवस्था वर्तमान समाज की एक आवश्यकता है। प्रशासन की नयी तकनीको के प्रयोग द्वारा जेल व्यवस्था के लिए सुधार के प्रयास करने होगें। जैसे रात के बाद दिन आता है उसी प्रकार वर्तमान व्यवस्थायें भी बदल जायेगी। अंत में मै न्यायमूर्ति कृष्णा अय्यर द्वारा बीना सेठी बनाम बिहार राज्य [28] के वाद में दिए गये कथन को उधृत करुगा जो जेल प्रशासन और कैदियों के सम्बन्ध में महत्व का है ''एक दिन अधिकतर लोगों की चीखे और निराशा हमारे समाज की नींव को हिला देगी और सम्पूर्ण लोकतान्त्रिक ढाँचे को खतरे में डाल देगी। जब ऐसा होगा तो उसके लिये दोषी केवल हम होगें।''

संदर्भ सूची

1. डॉ0 संजीव महाजनः अपराधशास्त्र दण्डशास्त्र, प्रथम संस्करण, 2004, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृ0 256, 257।
2. पहली कारागार सुधार समिति, 1836, लार्ड मैकाले
3. ए0आई0आर0, एस0सी0 1739, 1997।
4. निताय राय चौधरीः इण्डियन प्रिजन लॉज एण्ड करेक्शन ऑफ प्रिजनस, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृ0 2।
5. जनसत्ता हिन्दी न्यूज, 19 सितम्बर, 2014।
6. डॉ0 ना0वि0 परांजपेः अपराधशास्त्र, दण्ड प्रशासन एवं प्रपीड़न शास्त्र, सातवॉ संस्करण, सैन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन, इलाहाबाद, पृ0 2012, 393।
7. एन0सी0आर0बी0 2014, http://ncrb.nic.in/StatPublications/CII/CII2014/Compendium%202014.pdf retrieved 11.9.16
8. ए0आई0आर0, एस0सी0 27, 1950।
9. ए0आई0आर0, एस0सी0 425, 1966।
10. ए0आई0आर0,, एस0सी0, 2012, 1974।
11. ए0आई0आर0, एस0सी0, 1974, 2012।
12. ए0आई0आर0, एस0सी0 1978, 1550।
13. ए0आई0आर0, एस0सी0 1979, 1360।
14. ए0आई0आर0 एस0सी0 1980, 898।
15. ए0आई0आर0 एस0सी0 1981, 625।
16. ए0आई0आर0 एस0सी0 1982, 6 ।
17. ए0आई0आर0 एस0सी0 1983, 141।
18. एस0एस0सी0 1995, 702।
19. ए0आई0आर0 1997, एस0सी0 1739।
20. ए0आई0आर0 1998, एस0सी0 3164
21. ए0आई0आर0 2001, क्रि0लॉ0ज0 1727 (सु0को0)।
22. ए0आई0आर0 2004, सु0को0 2223।
23. ए0आई0आर0 सु0को0 2005, 972।
24. ए0आई0आर0 एस0सी0 2006, 1946।
25. श्रंइंसचनत भ्पही ब्वनतजए क्मबपकमक वद डंलए 2007
26. ए0आई0आर0 1997एस0सी0 610
27. ए0आई0आर0 एस0सी0 2016 933
28. ए0आई0आर0 एस0सी0 1983, 339।